Vol. I, Issue XII – April 2016
Article ID # 800
Peer–Review Refereed Research Journal
ISSN No. 2395-6941
Website: http://www.umrjournal.com/

अभिनय की लोकप्रियता का आधार बना 'संवाद'

(हिंदी सिनेमा व अभिनेताओं के विशेष संदर्भ में)

योगेश वैष्णव कम्यूनिकेशन स्कॉलर
9424605321

"हम जहां पे खड़े हो जाते हैं, लाइन वहीं से शुरु होती है..."[1] जी हां, सही पहचाना, सदी के महानायक! जिनकी रियल लाइफ सीन भी कुछ इसी तरह है, बॉलीवुड में नायकों की लाइन में सबसे आगे, शिखर पर मौजूद हैं । किसी नायक को उसकी अदाकारी बॉलीवुड में प्रवेश तो दिला सकता है, मगर यदि यहां टिके रहना है तो इससे बढ़कर भी कुछ चाहिए..., व्यक्तित्व को उभार देने वाले संवाद, जो लोगों की जुबान से हमेशा छलकते रहे।

फिल्मों में संवेदनात्मक प्रभाव बनाये रखने, दर्शकों को हंसाने, रुलाने के लिए कसे हुए संवादो का इस्तेमाल भी जोरों पर है । चाहे भले ही बॉलीवुड की शुरुआती फिल्मों के संवाद-लेखकों को लोगों ने भुला दिया हो, लेकिन उनके लिखे हुए संवादो से कहानी के नायक को पहचान मिल गई है । नायक की अदायगी में संवाद भी शामिल हो जाए, तो उस अदाकारी के लोग दीवाने हो जाते है।

1955 मे आई फिल्म देवदास का यह सीन "कौन कम्बख्त बर्दाश्त करने के लिए पीता है, मैं तो पीता हूं, कि सांस ले सकुं..."[2] दिलीप कुमार की याद दिला जाती है । फिल्मों में संवाद प्रवाह की बात करें तो राजकुमार का वह डायलॉग "जिनके घर शीशे के होते हैं, वे दूसरो के घरों पर पत्थर नही मारा करते है... "[3] कौन भुला सकता है भला ! 1965 में आई फिल्म "वक्त" के लिए अख्तार उल इमान ने संवाद लिखा था ।

" बाबूमोशाय, जिंदगी और मौत ऊपर वाले के हाथ है, उसे ना आप बदल सकते हैं ना मैं.. "[4] यह सुनकर हर कोई भावनात्मक रुप से गद्‌गद्‌ हो गया । फिल्म आनंद मे अपनी लाजवाब अदाकारी और गुलजार के लिखे संतुलित संवादों से राजेश खन्ना आज भी लोगों के जहन में रचे बसे हैं। एक बार फिर 1972 की पाकीजा में राजकुमार का मीना कुमारी के लिए यह कहना " आपके पांव देखे, बहुत हसीन है, इन्हें जमीन पर मत उतारियेगा, मैले हो जाएंगे .."[5] सिनेमाघरों के दर्शकों के दिल में हलचल मचा देने वाली थी। आगे भी

© Universal Multidisciplinary Research Journal (Online)

ISSN No. 2395-6941
Website: http://www.umrjournal.com/

कमल अमरोही अपने इन रुमानियत भरे संवादो से फिल्मों को जीवन्त करते रहे। कुछ संवाद ऐसे भी, जिनमें सही शब्दों का इस्तेमाल, सही समय पर करने से ही नायकों को लाइफटाइम पहचान मिल गई, जैसे " खांमोश ...."[6] यह संवाद शत्रुघ्न सिन्हा पर फिल्म "बदला" (1974) के लिए जगदीश कंवल का था, जिसके बाद उनके इस अन्दाज को लोगों ने अपनाया भी और लगातार समय-समय पर इनके नकलची भी देखने को मिले। जब अजीत किसी सीन में दो खूबसूरत मॉडल के बीच सिगरेट हाथ मे लेकर यह कहे " सारा शहर मुझे लॉयन के नाम से जानता है... "[7] तब दर्शकों का मन खलनायक बनने की ओर उत्साहित होने लगता है, और हो भी क्यों ना। जब खलनायक का अन्दाज, संवाद मे फिट बैठता हो तो फिल्म के कुछ हिस्से में नायक पर खलनायक भारी ही पड़ेगा। बॉलीवुड मे संवाद फिल्मों की जान बन चुकी थी, जब सलीम-जावेद की जोड़ी ने 1976 की फिल्म " शोले " से अपने संवाद लेखन से अन्य लेखकों को चारों खाने चित कर दिया। " कितने.. आदमी थे ?... "[8] वाला सीन जिसे पर्दे में देखते ही लोगों का दिमाग ठंडा पड़ गया, साथ ही इसे अमजद खान के करियर का बेस्ट रोल भी माना गया।

इसी तरह " मिस्टर इंडिया " में सलीम-जावेद की जोड़ी ने एक और सितारे को बुलंदियों पर पहुंचा दिया । जब अमरीश पुरी ने कहा -" मोगेम्बो खुश हुआ"[9] तो सभी दर्शकों में इस खलनायक के प्रति आक्रोश देखा जा सकता था, रोष तो ऐसा था कि कहीं अमरीश पुरी उनके सामने आ जायें तो वे सभी मिलकर उन पर वहीं टूट पड़े । अमरीश पुरी के इस कुटिल अभिव्यक्ति भरे चेहरे की छाप हर दर्शक पर पड़ी थी । अमिताभ बच्चन ऊपर से नीचे काली पोशाक के साथ ... बढ़ी हुई सफेद दाढ़ी और बालों में, जब कहते हैं " रिश्ते में तो हम तुम्हारे बाप लगते हैं, नाम है शहंशाह... "[10] तो हर किसी को जुर्म के ख़िलाफ लड़ने वाला, न्याय के रक्षक के आने का अंदेशा हो जाता है । फिल्म शहंशाह (1988) में अपराधों को जड़ से खत्म करने के लिए इस संवाद से यदि लोगों ने उन्हे अपनाया, तो इससे पहले फिल्म " डॉन " (1978) में जब ये अपराधों और जुर्मों का बाप बनकर सामने आए और कहा " डॉन को पकड़ना मुश्किल ही नहीं, नामुमकिन है.... "[11] तो आलोचक भी उनकी इस कलाकारी के मुरीद बन गए।

"जब ये ढ़ाई किलो का हाथ किसी पे पड़ता है, तो आदमी उठता नही, उठ जाता है.... "[12] आधी फिल्म खत्म हो जाने के बाद सनी देओल की इस तरह की एंट्री ने पूरे फिल्म मेजान डाल दी, यह फिल्म थी दामिनी (1993) जिसके संवाद लेखक दिलीप शुक्ला जी थे। अब बारी थी बॉलीवुड के नये सुपरस्टार की जिसके आने की चहलकदमी होने लगी थी, "बड़े-बडे देशो में ऐसी छोटी-छोटी बातें होती रहती है... "[13] जी हां, शाहरुख खान की ! इनके

© Universal Multidisciplinary Research Journal (Online)

ISSN No. 2395-6941
Website: http://www.umrjournal.com/

आने के बाद एक के बाद एक रोमांटिक फिल्में पर्दे पर हिट होती गई, तो वहीं लोगों में रुमानियत का असर भी देखने को मिला । " हार के जीतने वाले को बाजीगर कहते हैं..."[14] या फिर "क.....क...किरन..." या "पिक्चर अभी बाकी है मेरे दोस्त.... " कुछ ऐसे ही संवादों ने शाहरुख खान को रोमांस किंग और बॉलीवुड-बादशाह का ताज पहना दिया। इनकी हिट फिल्में दिलवाले दुल्हनिया ले जाएंगे, बाजीगर, चक दे इंडिया और वीर-ज़ारा ऐसे ही संवादों से भरपूर दिलों को छू जाने वाली थी।

आज विश्व भर की लाखों फिल्मों में यदि बॉलीवुड फिल्मों की पहचान है तो वह इनके डायलॉगबाजी की वजह से। जब इन डायलॉग्स को अच्छी अदाकारी मिलती है तो वह दर्शकों और समीक्षकों के बीच हमेशा कायम रहती है । चाहे वह " वान्टेड" (2008) की "एक बार जो मैंने कमिटमेंट कर दी, तो फिर मैं खुद की भी नहीं सुनता... "[15] वाले सलमान खान हों ,या वंस अपॉन अ टाइम्स इन मुंबई (2010) की "रास्ते की परवाह करुंगा तो मंजिल बुरा मान जायेगी..."[16] वाले इमरान हाशमी ही क्यों न हों ? दरअसल " फिल्में सिर्फ तीन चीजों की वजह से चलती है... एंटरटेन्मेंट... एटरटेन्मेंट ...एंटरटेन्मेंट, और मैं एंटरटेन्मेंट हूं "[17] (विद्या बालन, डर्टी पिक्चर, 2011)

संदर्भ सूचीः

1. **Dutt, M. Amitabh Bachchan Bollywood Super Star, rajpath publication, delhi 1992, page 65**
2. **http://medobe.blogspot.in/2009/12/kaun-kambakht-hai-jo-bardaasht-karne-ke.html**
3. **http://www.sukanyaverma.com/2012/03/the-top-25-dialogues-of-hindi-cinema/**
4. **Gulazara, Saibal Chatterjee, Encyclopedia of Hindi Cinema, page 166, popular prakashan private limited Mumbai, 2003**
5. **Rishi, Tilak, Bless You Bollywood!: A Tribute to Hindi Cinema on Completing 100 years, Trafford Publishing, 2012**
6. **forums.itsboxoffice.com › Movies › Opinion**
7. **Ghosh, Tapan, Bollywood Baddies: villains, vamps and henchmen in hindi cinema, page 171,sage publication india pvt ld., 2013**
8. **Dwyer, Rachel, 100 Bollywood films, roli books pvt ltd., jaipur, 2005**
9. **Saran, Renu, Encyclopedia of bollywood, e-book**
10. **Chaudhuri, Diptakirti , Bollybook: the big book of hindi movie trivia, penguin books**
11. **Chopra, Anupama , Dilwale Dulhania Le Jayenge: (The "Brave-Hearted Will Take the Bride"), British Film Institute, 2002**

© Universal Multidisciplinary Research Journal (Online)

ISSN No. 2395-6941
Website: http://www.umrjournal.com/

12. **Rishi, Tilak Bless you Bollywood!: a tribute to hindi cinema on completing 100 years, Trafford publishing, 2012, page 89**
13. **www.filmykeeday.com/sunny-deol-all-time-hit-dialogues**
14. **http://www.filmyquotes.com/stars/2**
15. **http://www.iluvcinema.in/hindi/salman-khan**
16. **http://www.filmyquotes.com/movies/37**
17. **http://www.mediamanch.com/Mediamanch/Site/Catevar.php**

© Universal Multidisciplinary Research Journal (Online)

Vol. I, Issue XII – April 2016
Article ID # 801
Peer–Review Refereed Research Journal
ISSN No. 2395-6941
Website: http://www.umrjournal.com/

ROLE OF BUREAUCRACY IN INDIAN PARLIAMENTARY GOVT.

Dr. Upasana Sharma,
Assistant Professor in Political Science
Govt. College Faridabad
Email : upasanasharma1972@gmail.com

Introduction: Indian Bureaucracy is the administrative arm of the Government. Technically a branch of the executive, but legislature also has some control over its functioning. In the Indian democracy setup, its responsibility is to turn legislation into policies and act as intermediary between representatives and society. It has a wide range of duties, from formulating and planning difficult technical issues to handing out welfare checks, delivering the mail, etc. This Administrative system was introduced when India became a crown colony. Its development mirrored the professionalization of the civil service in Britain; the same as civil service in ministerial government, except that there were no elected heads of ministries. After independence, the government changed Indian Civil Service (ICS) to Indian Administrative Service (IAS). A centralized selection procedure was introduced, but the IAS officials are deputed to states or the central government. The Indian bureaucracy has an important role in Indian parliamentary government.

Background of the Bureaucrats: On this subject most of the studies are concerned with senior civil service personnel of the all-India and central services. Only Mathur's two studies include the state service personnel as well. Bhambhri's study concludes that "candidates with higher university qualifications, urban background, previous experience of some positions, whose parents have been employed in modern professions, have greater chances of success in the IAS." In all these studies there are data to support this conclusion. Subramanian has compiled data on probationers in the IAS, from 1947-1963 that reveal that the origin of new entrants has remained generally unchanged. There are differences in their

ISSN No. 2395-6941
Website: http://www.umrjournal.com/

background among the recruits in the Indian Foreign Service (IPS), Indian Administrative Service (IAS), Indian Police Service (IPS), etc.

Confining the discussion to the IAS, the profile of a recruit deposes that he comes largely from an urban middle class, but not so much from its higher echelons as the Foreign Service does; indeed, one fourth of the IAS consists of sons of lower civil servants, school teachers, and less prosperous small town lawyers who are distinctly lower middle class. Singhi compares managers in public and private bureaucratic organizations and shows that fewer people in public administration come from the English medium public school than do in private business organizations. Surprisingly the rural-urban mix among the public and private bureaucracies of Singhi's sample shows larger numbers from rural areas in the latter group.

As Singhi has drawn his sample of private bureaucracy exclusively from Rajasthan, it is possible that these organizations may have preferred to employ people from their neighborhood, thus showing a larger percentage from the village and town backgrounds. The IAS and other central services are recruited from all-India selection and then assigned to states. In this sense there is dissimilarity in the respective universe of the two samples drawn for this study. The sample of Block Development Officers (BDO) in Rajasthan in Mathur's study may be comparable to private bureaucracy in Singhi's, except that Mathur has classified his data in two broad categories—Rural 62.5% and Urban 37.5%. Usually a larger number of people with urban background would be expected to join private bureaucracy than the public. If the data in Singhi's research are rearranged, the situation may be comparable to the data in Mathur's study and may depict different trends.

Values and Attitudes of Bureaucrats: Bhambhri, Singhi, and Mathur have studied the values of civil servants. Bhambhri and Singhi's respective samples were drawn from the IAS and Mathur's (a) sample was drawn from state service personnel. Each has examined values differently. The difference may be explained by the researcher's definition of values and which of the values may have seemed important from his personal point of view. The researcher may well choose those values that might best fit in with the purpose of his study. Bhambhri has asked questions on values of equality, democracy, secularism, and

ISSN No. 2395-6941
Website: http://www.umrjournal.com/

economic planning. The responses are classified into higher and lower castes and show expected trends. The responses of the lower caste are more in favour of equality and democracy than are those of the higher caste respondents.

On secularism and economic planning, no marked differences exist for either caste group. Bhambhri has further analyzed his data by father's occupation, the university, and place of birth. The responses would be perhaps typical of any random group in our society. In his study of EDO's, Mathur tested what could be classified as values. He has classified his factors as cynicism, democratization, trust, power monopolizer, and several other categories that were relevant to his study. For each category he has asked a number of questions though composite score of these categories have not been made available, as they would indeed be difficult to obtain. A study of tables shows to me that the responses are likely to be typical of most groups in India though comparable data are not available to discuss this point in detail here. Singhi has asked questions on three categories of value orientations: 1) social values relating to caste and marriage, 2) political values on democracy and socialism, and 3) bureaucratic national values on competence in relation to selection and work allocation and the formal and impersonal nature of bureau- cracy.

He is also concerned with universalistic particularistic value orientation. Singhi found that a large number of bureaucrats consider caste as a drag on development and do not think that marriage by free choice by boys and girls is desirable. A large number of them consider democracy and socialism to be unsuited to the present situation. Most respondents thought that selection and allocation of work were based on non -rational considerations and not on competence. They also felt that the means of planning and development were defective. Singhi concludes: "The social values of a majority of bureaucrats are near modernity, universalism and achievement orientation. The political values, however, reflect conservatism...."

Political pull plays an important role in government any personal experience which indicates the above are all people treated fairly by government. A civil servant does not have to come from a slum to be able to improve its administration. Nor does he have to be a farmer

ISSN No. 2395-6941
Website: http://www.umrjournal.com/

to deserve placement in the department of agriculture. Instead he must have the sensitiveness or empathy towards people with which he can understand and appreciate their problems.

He must have the analytic and conceptual skills to diagnose socio-economic and human problems in his environment and the humility to seek knowledge and use it for the improvement of the society that he is appointed to servo. These characteristics are necessary for all elites in society and not the administrator alone. There is enough data to show that new employees socialize and become "like other employees." Most officers take up the accepted patterns of behavior of the role they are given. This pattern is true of all social situations. Trade union leaders as personnel officers manifest behavior that sometimes shows a stronger anti-union stance than other managers do.

Case studies of Harijans show that many of them tend to reject the members of their caste once they become successful (Aggarwal, 1976). An officer from the field office exhibits behavior patterns that are very similar to those of his predecessors when he is transferred to a controlling office such as the ministry of finance notwithstanding his stringent criticism of the predecessors in the role he now plays. Such examples are many. The behavior pattern and values as shown in the studies reviewed here may well be the manifestations of the culture of the organization. To understand the behavior of the civil servant studies may be necessary of the work culture and how employees are socialized in that society.

Some examples of this process are available in the writings of civil servants (Punjabi, 1965). Several studies of industrial employees have shown that neither the particular background characteristics of employees nor the sociological data explain their behavior or performance. Sharma (1974) in his study examined several factors of industrial workers such as rural-urban background, religion, caste, education, occupational background, status, etc., and whatever differences he found his sample could not explain the performance of employees. Dayal and Sharma (1976) studied the background of union members and found no relationship between the background factors and the behavior of employees. These factors did not distinguish the leaders from the followers, because both groups had a strongly similar family background, education, industrial experience, etc. The only

ISSN No. 2395-6941
Website: http://www.umrjournal.com/

distinguishing features were two: the leaders, more often than followers, came from urban families and had slightly higher educational background. Even in respect of these factors, the differences between the two groups were marginal. In our studies of strike among supervisory employees we found that education, background, social status, salary, etc., appear to have made little difference in the way supervisors behaved as compared to the behavior of lower income levels (1971).

After analyzing his data of BDOs, Mathur says, "We had found that background characteristics do not predict significantly bureaucratic perception". From the responses on the questions of values and attitudes, it is not possible to conclude that the respondents would necessarily behave in the way indicated by these answers. The responses may show socially accepted values and attitudes but the person may not behave in accordance with the stated manner. Those persons who show no caste prejudice in their interview responses, often show reverse patterns of behavior when they experience such situations. Such data have therefore serious limitations for predicting how bureaucrats would behave given the chance. Any conclusion about the effectiveness or otherwise of bureaucracy based on this kind of data is likely to be misleading.

Motive of Bureaucrats: Mathur has studied what conditions of work are important for civil servants in the state cadre. He is interested in finding out what motivates the civil servants and what is good and bad in administration with a view to determining the changes that can be considered necessary to improve administration. It would indeed be interesting to compare Mathur's factors contributing to improvement in administration in Rajasthan with the data from Laxmi Narain's study (1973, p. 65) of executives in business organizations.

But the data from the two studies are not strictly comparable because Mathur's focus is on systemic characteristics and Laxmi Narain's on factors that contribute to job performance. In the absence of strictly comparable data, it is possible to extrapolate from the available data that the kind of factors that an individuai considers necessary for more effective working are also factors that may be regarded by him as being important for improving his job performance.

ISSN No. 2395-6941
Website: http://www.umrjournal.com/

The direction of the responses of both groups is the same. Both feel that greater attention to recognition of an employee, greater delegation, and greater opportunity to achieve results are important. The probability is high that samples drawn at random among both groups would perhaps offer similar responses if they were asked the same questions about the effectiveness of organizations and job performance.

In summary, the data on the studies of attitudes and values of higher civil servants suggest the following generalizations:

1.) The attitudes and values of civil servants are incongruent with the requirements of the job as perceived by the concerned researchers. Researchers have emphasized this point. It is suggested that poor performance of administration in India can be explained by ill-matched attitudes and values of the senior personnel. If a direct relation has to be established between such attitudes and values and administrative behavior, the examination would have to consider the following:

a) Evidence would be needed to conclude that attitudes and values obtained in such interviews have direct relationship with behavior or performance. These aspects would have to be studied in behavioral terms as did Bales (1951), Whyte (1969) and others.

b) (b) Attitudes and values' of business managers, educationists, politicians and others on the same scale as that used for administrators would have to beobtained. If attitudes and values of all elite groups are similar, the negative consequences of these attitudes on public administration compared to other organizations would have to be established. In the absence of data on relationship between attitudes and performance and their particular impact on such public or government organizations, causality as implied in some of the studies reviewed here is not valid.

c) If the attitudes of the IAS, other central services and state services are similar, as appears to be the case, it is likely that behavioral patterns as discussed by researchers are induced, and in subsequent experiences reinforced, by the system in which the members work. If this is so, the relevant question for study would be,

ISSN No. 2395-6941
Website: http://www.umrjournal.com/

what are the characteristics of the system that induce the kind of attitudes and values that are dysfunctional for the tasks of the government, assuming that they are dysfunctional.

2.) One study compares the attitudes and values of IAS and central services with managers in industry. The sample of private bureaucrats in Singhi's study is drawn entirely from Rajasthan. A comparable group would have been the Rajasthan State services and not the group he has chosen for his study, i. e., personnel from the all-India and central services. The data do not, however, conclusively show that the differences in attitudes and values of these several groups are significant enough to explain the behavior of the subjects. Bhambhri and Singhi have also concluded that the nature of the attitudes they have reported explain the lack of concern for results and explain the administrator's orientation toward personal status and power, and that this orientation renders the administration ineffective and ill equipped to achieve national goals. Even if the observations were true, the causality is not established. The characteristics of the work system or its performance may not necessarily result from the personal orientation of individuals.

3.) Corruption in civil services is seen to be a serious problem. Several special commit tees and commissions have been set up to recommend how corruption could be checked; in spite of setting up an elaborate vigilance machinery, corruptionin public services has increased. Briefly, the studies in the first six books give us valuable data to build up a profile of the senior civil servant in India, and tells us of the trends in the recruitment pattern over several years. This can be useful in regulating recruitment where necessary if the results show trends contrary to public policy. The data in their present form neither explain the behavior of civil servants nor provide the clues to the good or poor performance of administration.

Handling Special Tasks of The Government:

Roy has studied in one district in Gujarat the role of bureaucracy in agricultural development. He suggests that three sets of factors are relevant in understanding this aspect: 1) the socio-economic background of the administrators and evaluation of their own selves in terms of their sense of self-reliance, self-confidence, and capacity for effectively

ISSN No. 2395-6941
Website: http://www.umrjournal.com/

handling the environment; 2) the functioning of the administrative system and how it supports or hinders the administrator; and 3) the characteristics of the environment. An additional factor is how well do the official and non-official leaders cooperate in panchayati raj. After an elaborate study of the factors included in his model, Roy concludes:

In spite of the pressures for the realization of organizational goals, the organization is unable to fully rescue itself from its difficulties. This is because of poor communication with the environment, unsatisfactory adjustment to it, and lower productivity. In short, the inability of the organization to adjust to new environment and its inability to reorient itself to new tasks is one of the reasons that, as our data suggest, comes in the way of efficient implementation of agricultural programmers, Mathur and Bhattacharyya studied how the government handled emergency situations such as famine in Maharashtra.

Their study was carried out in districts of Aurangabad and Poona both of which had been severely affected by the famine of 1972-73. They found that within the same system of working, government ensured machinery for quick decision making. The chief minister visited the affected areas with concerned officers and after touring the areas, issued instructions for action as required. The officers also toured affected areas and took administrative decisions on the spot and obtained sanctions where required even on the telephone. At the district level, the collector was recognized as the leader and officers cooperated with him partly because the situation demanded it and partly because the collector got full support for his actions from the state headquarter.

The local politicians also cooperated with administration, and together they worked as a team. All these efforts were greatly facilitated by the availability of funds. The findings of Mathur and Bhattacharyya confirm my own findings of a similar study of famine in Bihar in 1966-67. The entire administration had evolved a super ordinate goal, e. g., saving human lives. The state level administration took a pragmatic view of the total situation and gave timely support to field offices in respect of finances, sanctions, and policy instructions. They saw that a common problem was to be tackled and considered the achievement of results to be more important than the following of procedures and rules to the letter.

ISSN No. 2395-6941
Website: http://www.umrjournal.com/

Relation between the Politicians and the Bureaucrats: The Kothari and Roy study of Meerut District is unique and concerns an important area of study in public administration—the relations between the politician and the administrator. The study was undertaken on behalf of the Administrative Reforms Commission and published in 1969. The researchers have studied the attitudes of the two groups towards each other and attitudes relating to several problems facing the district. The study points out the differences between them. The study provides data on the background, attitudes, and value orientation of both groups. They reveal essential differences between the two. The politicians appear to feel socially inferior to the administrators and somewhat afraid of them. There is no attempt to understand why strains in relationships develop between the administrator and the politician, neither do they show attempt to solve it.

District Organization: The tenth book listed here is a study of the organizational design of the district. Dayal, Mathur, and Bhattacharyya examined the tasks of administration at district level and analyzed them to determine how they should be organized using the socio-technical systems approach. They have suggested that the present organizational design leads to perspectives on the part of the administrators which become dysfunctional to the task to be performed. The lack of concern for results, lack of team working, poor control, and lack of timely remedial action, etc., are enhanced by the characteristics of the system. The researchers suggest that systemic changes may be necessary to enable civil servants to achieve the goals set for them.

Formulation of Developmental Policies: The last book analyses the way in which development policy is formulated in Government of India. Based on six case studies in three ministries and departments and the Planning Commission, Dayal, Mathur, Datta, and Banerji have generalized the most common features of policy formulation in the government. The emphasis is placed on accommodation and settlement through advice and consultation. The machinery ensures continuity and improvement rather than innovation and change. The role of specialists in policy formulation or in seeking alternatives for action is not always employed to best advantage.

ISSN No. 2395-6941
Website: http://www.umrjournal.com/

The Balance Sheet: The survey of literature covered in this review highlights certain concerns of researchers of the government system: "

1. There has been preoccupation with what kind of people are recruited to higher civil services, assuming that these aspects would explain their behavior at work. As mentioned earlier, it is a highly limiting approach for understanding administrative behavior. Simon in his book on Administrative Behavior (1961) emphasizes the interactional characteristics of the system and of leadership rather than attitudes and values of individuals. In the post-Hawthorne literature, explanation for human actions is sought in behavioral dimensions rather than only the attitudes. Whyte (1965, p. 160) analyses organizational behavior in terms of three interrelated and mutually reinforcing aspects of work:

1) The work environment,

2) The symbols of success, and failure, and

3) Interpersonal relations. Homans' (1950) conceptual scheme for understanding behaviour in groups includes activity, interaction, and sentiment. He employs these concepts for analysing group behaviour. There are several other concepts in literature now used for the study of behaviour in work organizations (Dubin, 1965; Gallerman, 1963).

2. All the reported studies assume that administration has failed to achieve the national goals and that in this particular respect, it has been ineffective. I doubt if this view is shared by the administrators or by the government as a whole, notwithstanding public statements on the subject. Assuming that lack of achievement on the part of administration cannot be explained merely by attitudes and values of civil servants as discussed earlier, why have other reasons for this failure not been explored in literature, especially when all these authors have assumed that administration has done poorly in India? I believe two diverse considerations apply in the present situation-

1) relating to the failure of administration and of conceptualization [of change in the administrative system, and

2) relating to conceptualization of the system itself and a theory of administration. Few people in top positions in the government would agree that the system has failed to achieve results. Even if certain failures are acknowledged, they are ascribed to either outside forces

such as the politician, illiteracy of the people, and poor judicial process. Whereas all these aspects may contribute to the failures of administration, they cannot explain the failure to improve these aspects when the government is nearly omnipotent and the nation's well-being depends so much on good administration.

Even politicians in government who make statements about the ineffectiveness of administration at times rarely authenticate these views by their actions. Neither do they take steps to change the system, nor appoint non-administrators in key roles to introduce new perspectives towards effectiveness. Sri Lanka and Pakistan have shown determination to change the mix of people in government services and to make a direct recruitment of officers in senior positions. Individuals often chosen to serve in the private offices of ministers, or on committees, or in other key positions invariably come from the civil service. The public announcements are rarely substantiated by action. The reasons for incongruity between action and public denouncement of administrators are understandable. The minister could hardly hope to get the cooperation and confidential information he needs for his own purposes if his secretariat did not get the information which is obtained through the camaraderie kor tho established code among the members of the cadres. There is also likely to be another reason.

A minister's public criticism of the civil servant is perhaps a compensation sought for having submitted in office to the latter's dictates and the feeling of helplessness for being trapped in the web of rules that only a civil servant is trained to apply, or sidetrack, according to his discrimination. Whatever the reason, either through fear, or unfamiliarity of administration, no other perspective of basic change in the system is evident at least from the behavior of the people in top positions in government. Passing the buck is a game we all play to cope with the existing dissonance and to survive in an environment in which mistakes in office are dealt with harshness rather than with compassion and understanding. Another technical problem about change in administration is that there is insufficient knowledge of bringing about change in the total system. Most experiences are based on experimentation or action research methodology. However well conceived, the action research model makes heavy demands on the time of senior administrators which a few can spare. It also implies the interest and

ISSN No. 2395-6941
Website: http://www.umrjournal.com/

knowledge of human dynamics and requires the kind of commitment, the energy, and self appraisal that few in administration seem willing to give. Lack of systematic knowledge about change

References:

1. Subramanian V. (1971), Social Background of India's Administrators, Publication Division, Ministry of I & B, Government of India, New Delhi.
2. Mathur, Kuldeep. (a), (1972), Bureaucratic Response to Development, National, Delhi.
3. Mathur, Kuldeep. (b) (1972), Sources of Indian Bureaucratic Behavior: Organizational Environment and Political Pressures in Rajasthan, H. C. M. State Institute of Public Administration, Jaipur.
4. Bhambhri C. P. (1972), Administrators in a Changing Society, National. Delhi. \
5. Gopalakrishnan, M; and Joshi. R. S. K., "Social Background of Regular Recruits to the I. A. S. in a Quarter Century from 1948 to 1972," L. B. S. National Academy of Administration Journal, Vol. XVIII, No. 4, Winter 1973, pp. 554-594.
6. Singhi, N. K., (1974), Bureaucracy: Positions and Persons, Abhinav Publications, New Delhi. Reaction to Specific Situation
7. Mathur, Kuldeep; and Bhattacharya, Mohit. (1975), Administrative Response to Emergency, Concept Publishing Co., Delhi.
8. Roy, Ramashray. (1975), Bureaucracy and Develop ment, Manas Publications, New Delhi. Relation Between the Politicians and the Administrators
9. Kothari, S.; and Roy, R. (1969) Relations Between Politicians and Administrators, Indian Institute of Public Administration, N. Delhi. District Organization
10. Dayal. I.; Mathur, Kuldeep: and Bhattacharya, M. (1974), District Administration, Macmillan, New Delhi. Formulation of Developmental Policies
11. Dayal, I.; Mathur, K.; Datta, A.; and Banerji, U. (1975); Dynamics of Formulating Policy in Government of India : Machinery for Policy Development, Concept Publishing Co., New Delhi.
12. Aggarwal, P. Case Studies of Harijans. Shri Ram Centre, (in preparation).
13. Bales, R. F. Interaction Process-Analysis. Reading, Mass.: Addison-Wesley, 1951.
14. Barnabas, A. P.; and Pelz, D. C. Administering Agriculture Development. New Delhi : Indian Institute of Public Administration.
15. Dayal, I. "Challenge of Change in Government," Paper presented at the Seminar on Public Services and Social Responsibility held by the Indian Institute of Advanced Study, Simla, Oct., 6-11 1973.
16. Dayal, I. and Sharma, B. R. Strike of Supervisory Staff in State Bank of India. Bombay : Progressive, 1970.
17. Dayal, I. and Sharma, B. R. Management of Trade Unions. New Delhi: Shriram Centre for Industrial Relations & Human Resources, 1976.

ISSN No. 2395-6941
Website: http://www.umrjournal.com/

18. Dubin, R. "Supervision and Productivity: Empirical Findings and Theoretical Considerations," Leadership and Productivity. San Francisco: Chandler, 1965.
19. Garret, J. The Management of Government. London: Pelican, 1972.
20. Gellerman, S. V. Motivation and Productivity. New York: American Management Association, 1963.

Vol. I, Issue XII – April 2016
Article ID # 802
Peer–Review Refereed Research Journal
ISSN No. 2395-6941
Website: http://www.umrjournal.com/

बाजारवाद और भारतीय पत्रकारिता मूल्य

डा. योगेश कुमार गुप्ता
विभागाध्यक्ष, पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग
निम्स विश्वविद्यालय, जयपुर
डॉ० शिखा शुक्ला (पूर्व शोध छात्रा)
म०म०मो० मालवीय हिन्दी पत्रकारिता संस्थान,
महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी

मानव समाज की हजारों वर्षों की कथा में 'संवाद' की भूमिका सर्वोपरि रही है। जब–जब संवाद की मात्रा और उसकी सकारात्मकता का विस्तार हुआ है, मनुष्य ने क्रान्तिकारी परिवर्तन किए हैं। इसके विपरीत जब–जब समाज संकुचित होकर अल्पसंवाद की स्थिति में आया है या नकारात्मकता की मात्रा बढ़ी है, मानव समाज का न केवल विकास अवरूद्ध हुआ है, परन्तु पशुवृत्तियों की तीव्रता भी बढ़ी है। पत्रकारिता जिसका आधुनिक स्वरूप मीडिया बन गया है, मनुष्य की संवादप्रियता का ही एक वृहद् स्वरूप है। अभिव्यक्ति के सभी आधुनिक माध्यमों के लिए एक समेकित संबोधन है– मीडिया। हिन्दी मीडिया ने पत्रकारिता से लेकर मीडिया बनने तक लम्बा सफर तय किया है।

सवा सौ करोड़ की आबादी वाले लोकतंत्र की जनता को इसी चतुर्थ स्वतम्भ के विचारों से अपनी धारणा बनाने में सहायता मिलती है। प्रारम्भिक काल की पत्रकारिता क्रांति की सहयोगी थी, परन्तु आजादी के 68 वर्षों के उपरान्त इसका स्वरूप अनियंत्रित रूप से बाजारवादी ताकतों से प्रभावित हुआ है। वर्तमान में पत्रकारिता जिन मूल्यों पर काम कर रहा है, वे समाज के लिए कितने आवश्यक तथा लाभप्रद है, इसकी पारदर्शिता धुँधली है। यदि वर्तमान का आकलन करें तो बाजारवाद की हवा इतनी तीव्र चली है, जिसने जनसंचार और सूचना प्रौद्योगिकी में मूल्य–निष्ठा की आवश्यकता को ऐसी स्थिति में लाकर खड़ा कर दिया कि इसे एक चुनौती माना जा रहा है। नई आर्थिक नीतियों ने देश में विदेशी पूँजी का अंबार लगा दिया। देश में सामाजिक राजनीतिक मूल्यों में जबरदस्त परिवर्तन आया और पत्रकारिता के स्वरूप और प्रकार में भी क्रांतिकारी परिवर्तन आया।

पिछले दस साल में भारतीय पत्रकारिता ने नए आधुनिक दौर मे प्रवेश किया है। प्रिंट और टी०वी०, रेडियो के साथ ही डिजिटल मीडिया एक नए माध्यम के रूप में उभरा है। कुल मिलाकर भारतीय

© Universal Multidisciplinary Research Journal (Online)

पत्रकारिता अब दो हिस्सों में विभाजित है। एक तरफ एक संगठित उद्योग में परिवर्तित हो चुका है मीडिया, जिसमें समाचार पत्र–पत्रिकाएँ और टी०वी० न्यूज चैनलों का पूरा कारोबार शामिल है। जो निरन्तर बाजार और राजनीति के दबाव से जूझ रही है। इसके लिए उसे कई समझौते और सौदे भी करने पड़ रहे हैं। इसके बाद भी मीडिया की यह मुख्यधारा बाजार और पत्रकारीय सरोकारों के बीच दिन–प्रतिदिन संतुलन बनाने की कोशिश करता दिखाई देता है। दूसरी तरफ डिजिटल और सोशल मीडिया का वह विस्तृत संसार है जो स्वच्छंदता और अराजकता की स्थिति तक स्वतंत्र है। किताबें और अखबार पढ़ने की आदत से दूर और टी०वी० के सामने घंटों बैठने की विवशता से मुक्त युवा पीढ़ी के बीच डिजिटल और सोशल मीडिया बेहद लोकप्रिय है। भारतीय मीडिया को अपने इन्हीं दोनों स्वरूपों के मध्य से अपने भविष्य का मार्ग प्रशस्त करना है।

प्रस्तावना – साल 1826 मई माह की 30 तारीख को 'उदंत मार्तड' समाचार पत्र के प्रकाशन के साथ हिन्दी पत्रकारिता का श्रीगणेश हुआ था। पराधीन भारत को स्वराज्य दिलाने की गुरुत्तर जवाबदारी तब पत्रकारिता के कांधे पर थी। कहना न होगा कि हिन्दी पत्रकारिता ने न केवल अपनी जवाबदारी पूरी निष्ठा के साथ पूर्ण किया, अपितु भविष्य की हिन्दी पत्रकारिता के लिए एक नयी दुनिया रचने का कार्य किया। स्वाधीन भारत में लोकतंत्र की गरिमा को बनाये रखने तथा सतर्क करने की जवाबदारी हिन्दी पत्रकारिता के कांधे पर थी। 1947 के बाद से हिन्दी पत्रकारिता ने अपनी इस जवाबदारी को निभाने का भरसक यत्न किया किन्तु समय गुजरने के साथ–साथ पत्रकारिता पहले मिशन से प्रोफेशन हो गई और बाद के समय में पत्रकारिता ने मीडिया का रूप ले लिया। इस परिवर्तन के दौर में पत्रकारिता गुम हो गई और पत्रकारिता की टेक्नॉलाजी के स्थान पर टेक्नालॉजी की पत्रकारिता की जाने लगी। अर्थात् पत्रकारिता के बुनियादी सिद्धान्तों और मूल्यों को तज कर हम तकनीकी पत्रकारिता के दौर में पहुँच गये हैं। तकनीकी पत्रकारिता ने ही पत्रकारिता को मीडिया के स्वरूप में परिवर्तित कर दिया है और यही कारण है कि पत्रकारिता की विश्वसनीयता पर बार–बार सवाल उठाये जाते हैं।

करीब ढाई सौ साल पहले और 1947 के दौर की पत्रकारिता का इतिहास हिन्दी पत्रकारिता के लिए स्वर्णकाल था। इस कालखंड की पत्रकारिता का एकमात्र मिशन अंग्रेजों से भारत को मुक्त कराना था और अपने प्रकाशनों के माध्यम से जनमत निर्माण का कार्य करना था। 1947 की स्वतंत्रता के बाद स्वाधीन भारत में पत्रकारिता में एक नई करवट ली। पत्रकारिता, खासतौर पर हिन्दी पत्रकारिता के समक्ष एक नये भारत की रचना की जवाबदारी थी। तब पत्रकारिता को लोकतंत्र का चौथा स्तम्भ कहा गया। पत्रकारिता को लोकतंत्र का चौथा स्तम्भ कहा जाना कोई संवैधानिक विषय नहीं है बल्कि उसकी जवाबदारी के चलते माना गया कि पत्रकारिता लोकतंत्र का चौथा स्तम्भ है। देश के समग्र विकास के लिए पंचवर्षीय योजनाओं का श्रीगणेश किया गया। इन योजनाओं के क्रियान्वयन पर पत्रकारिता ने पैनी नजर रखी और परिणामस्वरूप अनेक स्तर पर अनियमितताओं पर नियंत्रण पाया जा सका। साल 1947 के बाद से 1975 के पहले तक पत्रकारिता अपने स्वर्णकाल को खोकर रजतकाल में पहुँच चुका था। पत्रकारिता में गिरावट तो दिखने लगी थी लेकिन वह केवल छाया भर थी। साल 1975 में आपातकाल

के समय से पत्रकारिता का वैभव गुम होता दिखा। हालांकि पत्रकारिता का वैभव गुमनाम नहीं हुआ था बल्कि अधिसंख्य पत्र मालिकों ने सरकार के समक्ष घुटने टेक दिये थे। पत्र मालिकों के गिरवी हो जाने से पत्र में काम करने वाले पत्रकारों की स्वतंत्रता पर भी नियंत्रण स्वाभाविक था। हालांकि हिन्दी पत्रकारिता इस बात के लिए गौरव का अनुभव कर सकती है कि इस बुरे समय में भी कुछ अखबारों ने अपने तेवर को बनाये रखा।

आपातकाल की समाप्ति के बाद भारत में पत्रकारिता का तेवर और तस्वीर एकदम से बदलने लगी। समाचार पत्र–पत्रिकाओं के प्रकाशनों की संख्या में निरंतर वृद्धि होने लगी। पत्रकारिता में गुणवत्ता का लोप होने लगा और संख्या बल बढ़ जाने से आहिस्ता आहिस्ता पत्रकारिता मिशन के स्थान पर प्रोफेशन बन गयी। पत्रकार प्रोफेशनल होने लगे और प्रकाशक उद्योगपति। अखबारों का सामाजिक सरोकार नेपथ्य में चला गया और अखबार एक उत्पाद बन कर रह गया। यह वही समय है जब 'पीत पत्रकारिता' अपने शबाब पर थी। किसी को महिमामंडित करना अथवा किसी की मानहानि करना, इस नये उद्योग को सुहाने लगा था। बदले में उसे मनमाफिक लाभ भी मिलता था। पत्रकार अब प्रोफेशनल हो चले थे, सो लेखनी की धार भी कम होती महसूस हो रही थी। पत्रकारिता उनके लिए जीविकापार्जन से ज्यादा कुछ नहीं थी। सम्पादक नाम की संस्था को विलोपित किये जाने की साजिश भी इसी कालखंड में हुई थी। पत्रकारिता में न सम्पादक की कुर्सी बची और न पत्रकार।

वर्तमान में पत्रकारिता का स्वरूप पूर्णतः परिवर्तित हो चुका है। पत्रकारिता तकनीकी रूप से समृद्ध तो हो गई किन्तु सामाजिक सरोकार पीछे छूट गये। इस दौर में एक नयी परिभाषा गढ़ी गई जो दिखता है, वह बिकता है। पत्रकारिता कभी बिकाऊ थी नहीं, सो उसने रास्ता बदल लिया और मीडिया ने इस रिक्त स्थान पर कब्जा पा लिया। वह दिखने और बिकने की पत्रकारिता कर रहा है। तकनीकी रूप से सक्षम हो जाने के बाद तथ्यों की पड़ताल करने का वक्त नहीं है और समझ भी। ढाई सौ साल की पत्रकारिता की शैनैः शनैः किस तरह रसातल में जा रही है, इसका उदाहरण है पेड न्यूज कल जिसे हम पीत पत्रकारिता कहते थे, आज वह पेड न्यूज की श्रेणी में गिना जाने लगा है।

इन दिनों इस बात को लेकर विलाप किया जा रहा है कि खबरों का कोई प्रभाव नहीं होता है। यह सच है कि खबरों का प्रभाव नहीं होता है और हो भी कैसे? जब खबर की जगह सूचना दी जा रही हो। खबरों का अर्थ होता है किसी सूचना के तथ्यों तथा आंकड़ों का गहन परीक्षण एवं उसका विश्लेषण आधी–अधूरी सूचना और पूर्वाग्रह से ग्रसित होकर खबरों के प्रकाशन को समाज क्यों गम्भीरता से ले? स्टिंग ऑपरेशन के नाम पर जो गन्दगी की जा रही है, उसे भारतीय समाज सहन नहीं कर पाता है। खोजी पत्रकारिता के नाम पर किसी को व्यक्तिगत रूप से लांछित करना पत्रकारिता की मर्यादा के खिलाफ है। यह पत्रकारिता की मर्यादा के प्रतिकूल है कि हम कुछ लोगों पर तो अंगुलियाँ उठायें और शेष को अनदेखा कर दें। सभी को कटघरे में खड़ा करने का साहस जब आयेगा तब पत्रकारिता दुबारा अपना वैभव प्राप्त कर सकेगी।[1]

पत्रकारिता का व्यवसायीकरण – वैश्वीकरण, बाजारवाद एवं उपभोक्तावाद के बढ़ते प्रभाव से देश की

राजनीति, शासन, आर्थिक जगत, शिक्षा जगत, सामाजिक क्षेत्र अत्यधिक प्रभावित हुए और पत्रकारिता भी उनकी चपेट में आ गई। यह मिशन से व्यापार, उद्योग, पूंजी निवेश का माध्यम और मुनाफा कमाने का उपक्रम बनता गया। उदारीकरण की आड़ में बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के देश में बड़ी संख्या में प्रवेश से मीडिया और मीडिया कर्मी काफी संख्या में इससे प्रभावित होने लगे।

अखबार को आमदनी, मुनाफे का माध्यम और उत्पाद (Product) बनाने की होड़ लग गयी। ऐसे समाचार पत्र एवं पत्रिकाएँ बन्द कर दी गयी जो लोकप्रिय तो थीं, किन्तु उनसे लाभ कम था। उधर कारपोरेट जगत के हावी होने से बाजारवाद, न्यूज रूम में प्रवेश कर गया। अधिक लाभ कमाने के लिए विज्ञापन चाहिए और उसके लिए प्रसार संख्या बढ़ाना आवश्यक है। इस प्रकार समाचारों के विषयवस्तु में गिरावट बढ़ती गयी। पत्रकारिता के व्यवसायीकरण होने के साथ–साथ वह मनोरंजन का साधन बनने लगा। इससे खबरों की प्रस्तुति में नाटकीयता प्रदर्शन की वृत्ति और आकर्षण का प्रवेश होने लगा। जो पत्रकारिता संतुलित खबरों, पक्ष एवं विपक्ष की खबरों, असहमति के भी उद्‌गारों के प्रकाशन, खबर की विश्वसनीयता और खुलेपन के लिए सुपरिचित था, वहाँ अब कई क्षेत्रों की आवाजें दब गयी या उपेक्षित हो गयी।

उपेक्षित, पीड़ित, कतार में पीछे खड़े व्यक्ति की आवाज को गूंजाने वाले मीडिया में धनी, प्रभावी, भ्रष्टाचारी, ताकतवर, साधन–सम्पन्न, माफियाओं, वोट–बैंक पर हावी लोगों की आवाज गूंजने लगी। उचित, नीतिगत, तर्कसंगत, मानवीय विचारों की आवाजें उपेक्षित होने लगीं। वही छपेगा या प्रसारित होगा, जो ग्राहक–दर्शक बढ़ाए या विज्ञापनदाता को आकर्षित करे। वर्तमान के डिजिटल युग में अखबारों में ठोस व जनहित की खबरों के लिए जगह सिकुड़ने लगी। पत्रकारिता का स्वभाव और गुणात्मकता की बलि चढ़ गयी। गम्भीर सामग्री की प्रस्तुति घटने लगी। समाचार पत्रों में साहित्य एवं विचारपूर्ण सामग्री की मात्रा कम हो गयी। आनन्द और मौज प्रमुख हो गए।[3]

बढ़ता विदेशी पूंजी निवेश – पत्रकारिता धीरे–धीरे बहुराष्ट्रीय कम्पनियों एवं कारपोरेट जगत के प्रभाव में आता गया। जनहित की बजाय मुनाफा कमाने और नागरिकों की बजाए उपभोक्ता उसके अराध्य बन गये। मुनाफा ही मुख्य लक्ष्य बन गया। मीडिया में विदेशी पूंजी निवेश के जरिये विदेशी हित साधने एवं कई किस्म के नए–नए रूपों के साम्राज्यवाद की साजिशें शुरू हो गयीं। देशभक्ति, जीवन–मूल्य, संस्कृति विरासत, राष्ट्र–गौरव, देश की अस्मिता जैसी बातें पिछड़ गयी। विज्ञापन के दृष्टिगत अब साहसिक रिपोर्टिंग और गलत तत्वों के खिलाफ हिम्मत से लिखने की प्रतिबद्धता कमतर हो गयी। पत्रकारिता के मूल्यों के प्रति प्रतिबद्धता की बजाए अखबारों एवं टीवी चैनलों में जो परोसा जा रहा है वह बताता है कि पत्रकारिता किधर जा रही है? उसके मूल्य, निष्पक्षता, सिद्धान्त एवं निर्भीकता के दावे कहाँ गए?

मीडिया बना 'मनोरंजन उद्योग'– वैश्वीकरण के इस दौर में मीडिया को व्यावसायीकरण से मनोरंजन की तरफ ढकेला जा रहा है। नई तकनीकी प्रगति इसमें सहायक हो रही है। इससे अखबार पढ़ने, गम्भीर पाठन की बलि हो रही है। समाचार पत्र पढ़ने वालों की संख्या घट रही है। विश्व समाचार पत्र संगठन

(वर्ल्ड एसोसिएशन ऑफ न्यूजपेपर्स– दान) के सर्वेक्षण के अनुसार विकसित देशों में अखबारों की प्रसार संख्या घट रही है और विकासशील देशों में बढ़ रही है।

आधुनिक, सम्पन्न युवा वर्ग की जीवन शैली में अखबार पढ़ने की, गम्भीर पाठन का समयाभाव है।[4] टीवी चैनल टीआरपी के पीछे भाग रहे हैं और इस क्रम में, अपराध, सेक्स, अंधविश्वास, धर्म–सबकुछ परोस और बेच रहे हैं। जितने चैनल बढ़ते जा रहे हैं उतनी ही खबर घटती जा रही है। कायदे से ये दौर खबरों की नए सिरे से व्याख्या का दौर है। खबर ये मांग कर रही है कि उसे पुर्नपरिभाषित किया जाए। किन्तु यह काम जिस सामाजिक समझ, संवेदना और सरोकार की मांग करता है, उसका मौजूदा पत्रकारिता से दूर–दूर तक अभाव दिखता है। इसका नतीजा यह हुआ है कि लोगों को अपनी तरफ से खींचने की दौड़ में लग मीडिया तरह–तरह के प्रयोग से गुजरता दिखाई पड़ रहा है।[5]

वैश्वीकरण आज विश्वव्यापी पूँजीवाद कारपोरेटीकरण नए साम्राज्यवादों को पनपा रहा है, जो उपभोक्ताओं को उसने प्रभाव में लाने के लिए झण्डे या विचारधारा की बजाय अपने ब्रांडों का और प्रॉडक्ट का इस्तेमाल कर रहे हैं। वैश्वीकरण का यह राजनीतिक–चेहरा दिखने में भले सामान्य दिखे पर खरनाक है। विदेशी पूँजी के विनियोजन के साथ–साथ निजीकरण की प्रक्रिया तेजी से बढ़ रहा है। ऐसे हालात में विदेशी मीडिया बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का यहाँ के मीडिया जगत में पूँजी निवेश बढ़ने के कारणों एवं परिणामों पर गम्भीरता से ध्यान देना जरूरी है। इसके परिणामों या दुष्परिणामों से देश व दुनिया को सजग करने वाला मीडिया क्या मनोरंजन के दांव का शिकार हो जाएगा? क्या कलम नहीं चलाएगा? क्या वह इस भय का शिकार है कि मनोरंजन नहीं करेगा तो खत्म हो जाएगा?

मनोरंजन एवं मौज मस्ती में मीडिया का उपयोग या दुरुपयोग खतरनाक है, जो अच्छी व्यवस्था लाने के लिए जन्म लिया, विकसित हुआ, ताकतवर हुआ, प्रभावी हुआ वह क्यों भटक गया? क्या वह मालिकों, मुनाफे, अच्छे वेतनमान, केवल व्यवसाय में ही उलझकर रह गया है? यदि पत्रकारिता ही इस हालात के आगे समझौता कर गया तो देश का क्या होगा? नियमित मुख्यधारा मीडिया के इस साख के संकट से वैकल्पिक मीडिया के लिए स्पेस पैदा हो सकता है।[6]

वैकल्पिक मीडिया – मीडिया उत्पादों के वैश्विक प्रवाह के बाधाविहीन बनने के बाद नये तरह का सूचना और संचार का परिदृश्य पैदा हुआ है। प्रिंट, रेडियो, टेलीविजन और मल्टीमीडिया इण्टरनेट बहुत सारे मीडिया उत्पाद व्यापक विकल्प पेश कर रहे हैं। दूरसंचार, सेटेलाइट और कम्प्यूटर से आज इण्टरनेट के रूप में एक ऐसा महासागर पैदा हो गया है जहाँ मीडिया की हर नदी, हर छोटी–मोटी धाराएँ आकर मिलती है। इण्टरनेट पर सभी समाचार पत्र, रेडियो और टेलीविजन चैनल उपलब्ध है। वर्तमान में हर बड़े से बड़े और छोटे से छोटे संगठनों की अपनी वेबसाइट है जिन पर हर प्रकार की जानकारियाँ उपलब्ध है। इण्टरनेट पर नागरिक पत्रकार ने अपनी प्रभावशाली उपस्थिति दर्ज की है। नागरिक पत्रकारिता के माध्यम से उन तमाम तरह के विचारों की अभिव्यक्ति मिलती है जिनकी मुख्यधारा की कॉरपोरेट व्यापारिक हितों पर कुठाराघात करने की भी क्षमता होती है। विकसित देशों में लगभग एक–चौथाई आबादी इण्टरनेट का इस्तेमाल करती है। इसलिए सोसल मीडिया अभिव्यक्ति के

एक प्रभावशाली माध्यम बन चुके हैं। सोशल मीडिया निश्चय ही आज के सूचना–शोरगुल वाले मीडिया बाजार की मण्डी में एक वैकल्पिक मीडिया में कुछ निहित कमजोरियाँ भी है। सोशल मीडिया के गुरिल्ला ने व्यापारिक मीडिया के बाजार में प्रवेश कर हलचल तो पैदा कर दी है किन्तु अभी ये देखा जाना बाकी है कि यह इस मण्डी में अपने लिए कितने स्थान का सृजन कर पाता है और किस हद तक कॉरर्पोरेट और सरकारी संगठनों के इसे विस्थापित करने के प्रयासों को झेल पाता है।

इस विषय में सबसे अधिक आशावादी तथ्य यह है कि मुख्यधारा कॉरपोरेट मीडिया के समाचारों और मनोरंजन की अवधारणाओं में भी रूझान पैदा हो रहे हैं उससे इसकी साख और विश्वसनीयता में जबरदस्त गिरावट आ रही है। मुख्यधारा मीडिया की साख में इस गम्भीर संकट से सोशल मीडिया के लिए अपने स्थान से विस्तार की नयी सम्भावनाएँ पैदा हो गयी है।

मूल्यों से समझौता करता पत्रकारिता –

''दो में से क्या तुम्हें चाहिए कलम या कि तलवार
मन में ऊँचे भाव कि तन में शक्ति विजय अपार,
अंध कक्ष में बैठ रचोगे ऊँचे मीठे गान,
या तलवार पकड़ जीतोगे बाहर का मैदान।'

रामधारी सिंह दिनकर की यह कविता कलम या तलवार हमें लोकतंत्र के चौथे स्तम्भ पत्रकारिता की ताकत से परिचित कराती है। किन्तु वर्तमान में हमारे देश के पत्रकारों की इस तलवार की धार कुंद पड़ चुकी है। कलम अब अंगार नहीं, स्वार्थ की स्याही से भरे लेख लिखती है। आज हमारे देश में 400 से अधिक न्यूज चैनल और 80,000 के करीब अखबार पंजीकृत है। किन्तु अधिकतर न्यूज चैनलों में जो कुछ दिखाया जाता है, उसका न्यूज से कोई लेना–देना नहीं होता। हर चैनल या समाचार–पत्र अपने निजी स्वार्थ के लिए किसी–न–किसी राजनीतिक संस्था से जुड़ा हुआ है और उसका बचाव करता नजर आता है। पत्रकारिता अपने दायित्वों की अनदेखी कर रहा है।

वर्तमान पत्रकारिता मीडिया की स्वार्थ और गन्दगी की राजनीति को बढ़ावा देने में बहुत बड़ा हाथ है। आए दिन रिश्वत और जालसाजी के स्टिंग ऑपरेशन किए जाते हैं जिन्हें पत्रकार उन्हीं धोखेबाजों से मोटी रकम लेकर उन्हें रूकवा भी देते हैं, जिससे पत्रकारिता की विश्वसनीयता में गिरावट आई है। आजादी के समय हमारे देश में महावीर प्रसाद द्विवेदी, प्रताप नारायण मिश्र, मदन मोहन मालवीय, प्रेमचन्द जैसे बड़े–बड़े सम्पादक थे, जिनकी पत्र–पत्रिकाएँ हमेशा सच उगलती थीं लेकिन आज ऐसा कोई नहीं दिखता या यों कहें तो आजकल लोग बिकने के लिए ही पत्रकारिता के पेशे को चुन रहे हैं, क्योंकि आत्मा बेचकर शरीर की तृप्ति ही उनका उद्देश्य है। पाठकों का हित कहीं पीछे चला गया है। समाचारों की सार्थकता कम हो गई है, और मसाला बढ़ गया है।

पत्रकारिता की छवि दिन–पर–दिन गिरती जा रही है, जो कि चिन्ता का विषय है। यह पत्रकारिता को ही निर्धारित करना होगा कि उसकी लोकतंत्र में भूमिका क्या और प्राथमिकता क्या हो? सेक्स, फैंशन,

क्राइम क्रिकेट आदि पर आधारित खबरें पाठकों को या दर्शकों को परोसाकर कोई भी पत्रकारिता ज्यादा दिन बना नहीं रह सकता। पत्रकारिता पर लोकतंत्र की पहरेदारी का जिम्मे है, जिससे वह इस गम्भीर दायित्व से मुँह नहीं मोड़ सकता। अतः पत्रकारिता को अपने उत्तरदायित्वों का निर्वाह करना बहुत जरूरी है। लोकतांत्रिक मूल्यों के प्रति आस्था, शिक्षा, चिकित्सा, तकनीकी विकास और सामाजिक–सांस्कृतिक चेतना जाग्रत करने में मीडिया को आगे आना होगा। दलित, महिला एवं ग्रामीण विकास से मुँह फेरने की प्रवृत्ति से पत्रकारिता को बचने की आवश्यकता है।

राष्ट्र की एकता व अखंडता तथा मानवाधिकार के मुद्दों को स्थान देना होगा। भारतीय जीवन–मूल्य व लोक–संस्कृति को प्रवहमान बनाए रखने की भूमिका का भी मीडिया को निर्वहन करना होगा। पर्यावरणीय चेतना जाग्रत करने और बहुसंख्यक समाज के सरोकारों को तवज्जो देनी होगी पत्रकारिता को। समाज के यथार्थ को यथाव् प्रस्तुत करना, जो कि पत्रकारिता का मूल धर्म है। विकास के मुद्दों को उभारना और सकारात्मक खबरे छापना। आम आदमी की आवाज बनना और सबसे बड़ी भूमिका यह निभानी होगी कि जिससे भारत का लोकतंत्र मजबूत हो, सबको भागीदारी मिले और मीडिया के कार्य पर कभी प्रश्न न उठे। परन्तु वर्तमान भारत में पत्रकारिता इसके विपरीत भूमिका में आ चुका है। उत्पादक, उत्पाद और उपभोक्ता के इस दौर में खबरों को भी उत्पाद बना दिया गया है, जो बिक सकेगा, वही खबर है।

अतिशीघ्र समाचार देने की चाहत ने पत्रकारिता की विश्लेषणात्मक शक्ति को समाप्त कर दिया है। जरूरत है कि खबरों का विश्लेषण हो, उसकी सत्यता की जाँच हो और फिर खबर लोगों के सामने एक रिपोर्ट की तरह पेश की जाए, एक फैसले की तरह नहीं। पत्रकारिता के ऐसे विशेष पाठ्यक्रमों की रचना हो, जो नई पीढ़ी के पत्रकारों के अन्दर पत्रकारिता व लेखन की ओर सार्थक दृष्टि पैदा कर सके, उसके अन्दर छिपे समाज सेवा के भाव को जगाया जा सके, पत्रकारिता के मूल्यों–आदर्शों के प्रति उसकी निष्ठा में वृद्धि कर सके, देश–समाज व राष्ट्रीयता के मूल्यों के प्रति उसके अन्दर संवेदनशीलता को बढ़ाया जा सके तथा उन्हें मानवीय सरोकारों के प्रति और ज्यादा सजग व सतर्क रख सकें। सत्य, शान्ति व अहिंसा के मूल्य नई पीढ़ी की प्राथमिकता में ऊपर आएँ तथा वह मानवतापूर्ण देशभक्ति के संस्कार से ओत–प्रोत हो। साथ ही पत्रकारिता व लेखन की दुनिया में मूल्यों–आदर्शों व सरोकारों की भूमिका पर बहस को भी नई ऊर्जा प्रदान की जा सके।[8]

निष्कर्ष – मनोरंजन, मुनाफा और पूँजी के इस ग्रहण से बाहर निकलने की चुनौती पत्रकारिता और पत्रकारों के सामने आज है। स्वतंत्रता संग्राम की भाँति नये संग्राम की आज जरूरत है। किसी समय कार्लमार्क्स ने धर्म को अफीम बताया था और कहा था कि सम्पन्न तथा प्रभावी लोग इसका उपयोग जनता को भरमाने और अपने स्वार्थ साधने में करते हैं। आज वैश्वीकरण, उदारवाद, बाजारवाद, उपभोक्तावाद का दैत्य, विलासिता का आकर्षण एवं मनोरंजन तथा मुनाफावाद अफीम के रूप में प्रयोग करके लोगों को भरमाने और उनके शोषण में लगा है। धर्मवीर भारती, रघुवीर सहाय, एस०पी० सिंह, उदयन शर्मा सरीखे पत्रकारों की पीढ़ी ने अपने खून–पसीने से पत्रकारिता को एक आधार दिया था, जो

भारतीय पत्रकारिता के स्तम्भ बने और अपने तेवर से जाने जाते हैं।

वे आज भी पत्रकारिता के छात्रों के लिए आदर्श हैं। मगर वर्तमान पत्रकारिता की वजह से इन दिग्गजों के अथक परिश्रम, साहस और सच्ची छवि निरन्तर धूमिल हो रही है। वर्तमान में हमारे देश के लोकहित में काम करने वाली सरोकारी पत्रकारिता की आवश्यकता पहले से कहीं ज्यादा है, क्योंकि आज विपरीत शक्तियाँ ज्यादा काम कर रही हैं। पत्रकारिता ज्ञान का, जानकारी का, समझ का और सूझ–बूझ का धन्धा है, यह एक तपस्या है। इस तपस्या को करने के लिए इन चार गुणों का होना अति आवश्यक है, बिना इसके यह पेशा मदारियों का तमाशा बन सकता है। कलम के सिपाहियों के सामने बड़ी चुनौती है। पत्रकारिता को मनोरंजन के शिकंजे से बचाकर उसके पुराने सशक्त, निर्भीक, स्वाभिमानी, देशाभिमानी, जनसेवी चरित्र को पुनः स्थापित करने की जरूरत है।

सन्दर्भ –

1. कुमार, मनोज का लेख ''ताक पे पत्रकारिता, तकनीकी का दौर'', प्रवक्ता, कॉम अभिव्यक्ति का अपना मंच, 29 मई, 2015.
2. शर्मा, राधेश्याम का लेख ''मीडिया बन रहा 'मनोरंजन उद्योग' मीडिया मीमांसा, अप्रैल–जून 2010, पृ० 5.
3. उपर्युक्त, पृ० 6.
4. उपर्युक्त, पृ० 6.
5. आर्य, अलका का लेख, 'बाजार में मीडिया', विदुर वर्ष : 44, अंक 4, अक्टूबर– दिसम्बर 2007, पृ० 35, 36.
6. शर्मा, राधेश्याम का लेख ''मीडिया बन रहा 'मनोरंजन उद्योग' मीडिया मीमांसा, अप्रैल–जून 2010, पृ० 6,7.
7. धूलिया, प्रो० सुभाष का लेख 'समकालीन वैश्विक मीडिया : सूचना का अंत और मनोरंजन आगमन', जनसंचार विमर्श, **Vol. 1,** जनवरी–जून 2002, पृ० 22.
8. मांगलिक, सपना का लेख 'मूल्यों से समझौता करता महत्वाकांक्षी मीडिया', साहित्य अमृत, मीडिया विशेषांक, अगस्त 2015, पृ० 232, 233.

Vol. I, Issue XII – April 2016
Article ID # 803
Peer–Review Refereed Research Journal

ISSN No. 2395-6941
Website: http://www.umrjournal.com/

RECENT TREND OF SEQUELS IN BOLLYWOOD FILMS AND PEOPLE'S THINKING OVER IT

Abhishek Katiyar, Research Scholar

Kushaubhau Thakre University of Journalism and Mass Communication

Raipur Chattisgarh 492013

Dr. Rajendra Mohanty HOD Electronic Media Department

Kushaubhau Thakre University of Journalism and Mass Communication

Raipur Chattisgarh 492013

Contact: 7415124573, Email: abhiraj680@gmail.com

Abstract: Although in 100 years it has been a drastic change in hindi film industry. In these years lot of trends has come in to this industry, among of them making of sequels of films is getting popular now a days as it starts in 1986. But it has got acceleration in last two decades when lot of sequel films has been made and got success in BOX OFFICE. Today's scenario this particular trend is getting popular among film makers and producers. Youth of society is welcoming this new Sequel trend in Bollywood as they are fond of entertainment. People think that due to lack of new and good stories film makers has no way other than this to get out of the losses. And people also think that in big and small cities A culture of watching films at every weekend to spend good and quality time with friends family and their loved ones, has increased very fast. Due to this a race has been started among film makers to grab the chance and make the profit. This research paper is an effort to identify the reason why sequel film making trend is getting popular in Bollywood and what is the perception of youth towards it.

© Universal Multidisciplinary Research Journal (Online)

2016 is the year of sequels in Bollywood: in 2016 many sequels of films belonging of various genres, from adult comedies, action to horror. First in the line is "Kyaa Kool Hai Hum 3", the third instalment in the popular "Kyaa Kool Hai Hum" series, which is set to release on January 22. The film stars Tusshar Kapoor and Aftab Shivdasani. Another adult comedy slated to release this year is "Great Grand Masti". This film too is the third part of the comedy franchise "Masti". Actor Manish Paul will be seen in "Tere Bin Laden: Dead or Alive", a sequel to the 2010 satire "Tere Bin Laden" which starred Pakistani singer and actor Ali Zafar. Actress Priyanka Chopra will don the role of a tough cop in the Prakash Jha-directed "Jai Gangaajal". The film is a sequel to the critically acclaimed crime-drama "Gangaajal". Action star Sunny Deol stars in "Ghayal Once Again", which he has also written and directed. It is a sequel to the 1990 cult drama "Ghayal". Other sequels in the pipelines are Akshay Kumar starrer "Houseful 3", Farhan Akhtar's "Rock On 2" and Emraan Hashmi starrer "Raaz Rebooted".

First Sequel in India :- first Indian sequel film made when trend of sequel is not that much of popular like present time, In 1989 NIGAHEN was made that was the sequel of nageena 1986. After that sequel of Sanja dutt's VASTAV 1999 made in 2002 with the name of Hathiyar.

Versatile openion :- Anuradha goyal Journalist of Amar ujala says that the Idea of sequel has been adopted from Hollywood in Bollywood in last two decades,as Hollywood viewers are habitual of watching sequel movies that's why sequel Movies getting hits and Popular there. And in India also some Hollywood films sequels has done outstanding business like jurasik park series, spiderman,twilight,and recently relies Star wars.

Sequels and People: - Interesting thing is that Indian viewers accepting this new trend as it shows in collection of box office that most of the Sequel films are makin good profits also. Critics also considering this trend good for film industry. By this reason A season of Sequel film starts in Indian film industry as film makers are busy in writing followup series of their existing films.

Objectives of the study

Objective of this study is to know about People's opinion towards Bollywood films, taste, preferences, Watching Patterns and Why this trend is getting Popular. The perception of the People towards Hindi

© Universal Multidisciplinary Research Journal (Online)

ISSN No. 2395-6941
Website: http://www.umrjournal.com/

film Sequels and Scope of the Sequels in Hindi film industry is also tried to know.

Research Methodology - To find out the data Questionnaire of different age group people in three segments has been used. In this research sample size of 30 people in 3 segment of age 18-21, 22-25, 26-30 .10 person has been used. Technique of Sampling is Non Probability and sample is collected from different areas of Raipur city.

Hypothesis

Hypothesis is that youth of society is welcoming this new Sequel trend in Bollywood.

People think that film makers have no way other than this to get out of the losses.

People think that mall and Cineplex culture is helpful to promote sequel film making

As film makers don't have that much of new stories as demand of new films increasing due to lot of Cineplex's open in India.

Some Sequel films made in Bollywood

Film	**Sequel of**
Nigahen	Nageena
Hathiyar	Vastav
Fir herapheri	herapheri
Kya super Kool Hain hum	Kya Kool hain hum
Golmal returns	Golmal
Double Dhamal	Dhamal
Murder2,Murder3	Murder
RAZ2, RAZ3	RAAZ

© Universal Multidisciplinary Research Journal (Online)

Krish series	Koi Mil Gaya.
Tanu weds manu	Tanu weds manuReturns
Dhoom3	Dhoom, Dhoom2
DABANG2	DABANG.
ABCD2	ABCD
Welcome Back	Welcome

Upcoming Sequels - Dabang 3, bodygard2,kick 2, No entry me Entry, Aankhe, Herapheri, Houseful 3, Rock On 2, company 2, Gangajal 2, Ab tak chappan 2 And The most awaiting film Bahubali .

Why this trend is getting popular?

If we talk about twenty years back, there was lack of new and inserting stories in front of filmmakers. Due this lot of film were not been able to perform well on box office**.** After thinking on that some film makers follow the trend of Sequel film making from Hollywood and this idea clicks as we can see huge number of sequels are coming and doing well as well. There are some more reasons of getting this trend popular that are other reasons of this trend's popularity are. To make an Extension of Brand to Mitigate the risks factor and make Optimum utilization of resources and also to cash the tendency of human being's curiosity to know what next.

Conclusion:

On the basis of Questionnaire of different people of different age group researcher find out that 18 -21 age group youth.is accepting this sequel trend more than other. As they got more chance to see the new movie on every weekend since lot of films are coming due to this sequel trend. They On the other hand most of 22 -25 age group people think that Bollywood has copied the concept from Hollywood and got the solution of the problem of searching newer story ideas in this sequel trend as they have less possibility of loss in in comparative to a new story. While 26-30 age group people think that sequel trend is good but main theme story and core concept should not be hampered in sequels. They also said that due to increasing numbers of multiplexes and more shows are being showing in day comparative to

© Universal Multidisciplinary Research Journal (Online)

ISSN No. 2395-6941
Website: http://www.umrjournal.com/

older days. Film producer's distributors. Directors want to get more and more profit. And they think sequel is the best way as there is very less chance of loss.

Summary, Findings, Suggestions, Recommendations

Multiplex in demand and people's watching pattern

Scope of sequels is incremental in nature

Business model of sequel production

Story is Important Factor; original concept should not get hampered.

Treatment is also important factor.

Star cast is also a dependent factor

For sequel making there should be a proper professional Research work there.

It should not be done for making money only.

Reference: Books

1. Carolyn Jess-Cooke. (2009), Film Sequels: Theory and Practice from Hollywood to Bollywood, edinburgd university press ltd,22 george square edinburgh.
2. Carolyn Jess-Cooke, Constantine Verevi,Second Takes: Critical Approaches to the Film Sequel,(2010),state university of New york.
3. Derek Bose,.(2006) Brand Bollywood: A New Global Entertainment Order,sage publication india pvt ltd.New delhi.

Websites

1. https://en.wikipedia.org/wiki/Category:Indian_sequel_films
2. http://businessofcinema.com/bollywood_news/12-upcoming-bollywood-sequel-films-watch/242774
3. http://indianexpress.com/article/entertainment/bollywood/2016-to-be-year-of-biopics-sequels-in-bollywood/

© Universal Multidisciplinary Research Journal (Online)

Vol. I, Issue XII – April 2016
Article ID # 804
Peer–Review Refereed Research Journal

ISSN No. 2395-6941
Website: http://www.umrjournal.com/

STUDY OF THEORY OF HARD-SOFT ACIDS AND BASES AND THEIR APPLICATIONS

Hemant Kumar, Department of Chemistry

Govt. College for Women, Hisar

Email: hemanttanwar51193@gmail.com

Introduction: To understand the concept of Hard-soft acids and bases interactions[1,2,3], many theories have been developed to classify, rationalize and predict the reactivity of acid-base pairs (or donor-acceptor pairs). we should review some important acid-base concepts like Arrhenious concept, Bronsted-lowry concept, Lewis concept etc. Acids of arhenious theory form hydronium ions and bases form hydroxide ions in the solvent (water). Bronsted and Lowry expanded the Arrhenius definitions and defined acids as the proton donors and bases as the proton acceptors and also introduced the topic of conjugate acid-base pairs.

For any solvent other than water that can dissociate into a cation and an anion, the cation is taken as the acid and the anion is taken as the base. Any solute which is to be dissolved, if increases the concentration of the cation is treated as acid and those that increase the concentration of the anion are treated as base. The Lewis further expands the previous definitions in such a way that the base is electron-pair donor and the acid is electron-pair acceptor. These two combine to form an adduct. The Hard-Soft Acid-Base concept seeks to understand the reactivity of Lewis acids and bases according to the polarizability of their valence electrons. Zinc ion is a strong Lewis acid and oxide ion is a strong Lewis base.

Consider the reaction between ZnO and LiC_4H_9.

ZnO	+	2 LiC_4H_9	↔	$Zn(C_4H_9)_2$	+	Li_2O
soft -hard		hard-soft		soft -soft		hard -hard

In the above reaction zinc ion is the strong lewis acid and oxide ion is the strong lewis base. However the reaction proceeds towards the right (K>1) because hard-soft considerations override acid-base strength considerations.

© Universal Multidisciplinary Research Journal (Online)

ISSN No. 2395-6941
Website: http://www.umrjournal.com/

This also includes the reactions of metal with ligands to form coordination compounds. The electron-deficient compounds such as trivalent boron is categorized as a Lewis acid. The electron pair of HOMO on the Lewis base reacts with the LUMO of the Lewis acid. The MOs formed are of the adduct of lower energy.

HSAB Concept: This concept is an initiation for hard-soft acids and bases which also called the Pearson acid base concept. It gives the terms 'hard' or 'soft' and 'acid' or 'base' to compounds. Hard means for the small species, high charge states and have less polarizablity [4]. Soft means for the large species, have low charge states and highly polarizable. The soft acids react faster with soft bases and hard acids react faster with soft bases, other factors remains equal [5].

Hard Acid-Base Have:

- small atomic/ionic radius
- high oxidation state
- high electronegativity
- low polarizability
- energy low-lying HOMO (bases) or energy high-lying LUMO (acids).

Examples of hard acids are: H^+, alkali ions, Cr^{3+}, Cr^{6+}, $Ti^{4+,}$ BF3.

Examples of hard bases are: OH^-, F^-, Cl^-, $CH3COO^-$, CO_3^{2-}, NH_3.

The combination of hard acids and hard bases for each other is mainly ionic in nature.

Soft Acid-Base Have:

- large atomic/ionic radius
- low or zero oxidation state
- low electronegativity
- high polarizability
- energy high-lying HOMO (bases) and energy-low lying LUMO (acids).

Examples of soft acids are: Pt^{4+}, Pd^{2+}, Ag^+, Au^+, Hg^{2+}, Cd^{2+}, BH3, $CH3Hg^+$.

Examples of soft bases are: H^-,I^-, R3P, SCN^-. The affinity of soft acids and bases for each other is mainly covalent in nature.

The theory is used in contexts as qualitative mean which is especially for d-block metals science where numerous experiments have been done to explain the relative strength of ligand and transition metal ions in terms of their hardness and softness.

© Universal Multidisciplinary Research Journal (Online)

ISSN No. 2395-6941
Website: http://www.umrjournal.com/

Comperison Of Hard Acid-Base With Soft Acid-Base[5,6]

Properties	Hard Acid/Base	Soft Acid/Base
Atomic radius	Small	Large
Ionic radius	Small	Large
Oxidtion state	Higher	Lower
Polarizability	Low	High
Electronegativity	Higher	Lower
Bonding	Ionic	Covalent
HOMO energy of bases	Low	High
HOMO energy of acids	Higher	Lower

Generally acids and bases interact to form stable hard-hard (ionic character) and soft-soft (covalent character) compounds.

An attempt to quantify the softness of a base consists in determining for the following equilibrium:

$$BH + CH_3Hg^+ \rightleftharpoons H^+ + CH_3HgB$$

Where CH_3Hg^+ is a soft acid and H^+ is hard acid, which compete for B(base).

Electronegativity And Chemical Hardness:

In 1983 Pearson together with Robert Parr extended the qualitative HSAB theory with a quantitative definition of the **chemical hardness** (η) as being proportional to the second derivative of the total energy of a chemical system with respect to changes in the number of electrons at a fixed nuclear environment[7].

Mathematically the absolute hardness is given as: $\eta = \frac{\text{Ionization enthalpy-Electron affinity}}{2}$

The hardness [8] is related to the Mulliken's electronegativity (χ) which is given as:

$$\chi = \frac{\text{Ionization enthalpy+Electron affinity}}{2}$$

Chemical hardness[9] in electron volt

Acid	Hardness	Base	Hardness
Proton	Infinite	Fluoride	7
Lithium ion	35.1	Ammonia	6.8
Aluminium ion	45.8	Hydride	6.8

© Universal Multidisciplinary Research Journal (Online)

ISSN No. 2395-6941
Website: http://www.umrjournal.com/

Scandium ion	24.6	Carbon monoxide	6
Sodium ion	21.1	Hydroxide	5.6
Lanthanum ion	15.4	Cyanide	5.3
Zinc ion	10.8	Phosphine	5
Iodine	3.4	Nitrite	4.5
Carbon dioxide	10.8	Methane	4
Sulphur dioxide	5.6	Hydrosulphide	4.1

HSAB Principle And The Frontier Orbital Approach: For the organic reaction, the HSAB principle can also be explained through the frontier orbital method which can be used to illustrate the electrophilic and nucleophilic interactions[10]. A hard electrophile (acid) has a high-energy LUMO (lowest unoccupied molecular orbital) and usually has a positive charge and the soft electrophile has a low-energy LUMO but does not necessarily have a positive charge. A hard nucleophile (base) has a low-energy HOMO (highest occupied molecular orbital) usually has a negative charge.

Application of hard and soft theory:

- A series of chemical reactions used to separate and identify the presence of dozens of metal ions, is based largely on the hard and soft properties of the metal ions. The softer metals are precipitated out as chlorides or sulfides, with the harder ions formed as carbonates.
- In the coordination chemistry soft-soft and hard-hard interactions hold between ligands and metal.
- HSAB theory is also useful in predicting the products of metathesis reactions. The sensitivity and performance of the explosive materials can be explained on basis of HSAB theory in 2005[11].
- An application of HSAB theory is the so-called Kornblum's rule which states that in reactions with ambident nucleophiles (nucleophiles that can attack from two or more SIDES), the more electronegative atom reacts when the reaction mechanism is S_N1 and the less electronegative one in a S_N2 reaction. This rule (established in 1954)[12] predates HSAB theory but in HSAB terms its explanation is that in a S_N1 reaction the carbocation (a hard acid) reacts with a hard base (high electronegativity) and that in a S_N2 reaction tetravalent carbon (a soft acid) reacts with soft bases.

© Universal Multidisciplinary Research Journal (Online)

ISSN No. 2395-6941
Website: http://www.umrjournal.com/

- For an organic reaction, the HSAB principle has been applied for the study of kinetics and equilibrium and the frontier orbital method has been used to illustrate the electrophilic and nucleophilic interactions[13].

Critisism: The HSAB principle does not provide the quantitative measurement. In 2011 Herbert Mayr et al. from Ludwig Maximilian University of Munich (LMU) perposed and after that published a critical review in Angewandte Chemie[14]. The Consecutive analysis of many ambident organic system reveals that the older approach based on thermodynamic and kinetic control describes reactivity of organic compounds perfectly while the HSAB principle fails. The hard-soft factors are independent of acid-base character.

References:

1. W. B. Jensen, The Lewis acid-base definitions: a status report, *Chem. Rev.* 78(1), 1 (1978).
2. B. V. Deryagin, N. A. Krotova, and V. P. Smilga, Adhesion of Solids-Plenum Press, New York (1978).
3. V. Gutmann, The Donor-Acceptor Approach to Molecular Interactions, Plenum Press, New York (1978).
4. Jolly, W. L. Modern Inorganic Chemistry. New York: McGraw-Hill, 1984.
5. Glossary of terms used in theoretical organic chemistry, IUPAC, 2006.
6. Miessler G.L. and Tarr D.A. "Inorganic Chemistry"Prentice-Hall, 181-185, 1999.
7. Robert G. Parr & Ralph G. Pearson "Absolute hardness: companion parameter to absolute electronegativity". J. Am. Chem. Soc. 105 (26): 7512–7516, 1983.
8. Delchev, Ya. I.; A. I. Kuleff; J. Maruani; Tz. Mineva; F. Zahariev. New York: Springer,159–177, 2006.
9. M. Berkowitz and R.G. Parr, J. Chem. Phys., 88 (4), 2554, 1988.
10. E.C. Koch, Acid-Base Interactions in Energetic Materials: I. The Hard and Soft Acids and Bases (HSAB) Principle, 30(5), 2005
11. N. Kornblum, Robert A. Smiley, Robert K. Blackwood, Don C. Iffland J. Am. Chem. Soc. 77(23), 6269-6280, 1955.
12. R. G. Pearson and J. Songstad, Applications of the principle of hard and soft acids and bases to organic chemistry, *J. Am. Chem. Soc.* 89 (1827)1967.
13. R. G. Pearson, Absolute electronegativity and hardness, *Inorg. Chem.* 27, 734 (1988), *J. Am. Chem. Soc.* 110, 7684, 1988.
14. Mayr, Herbert. "Farewell to the HSAB Treatment of Ambident Reactivity". Angewandte Chemie International Edition. (50), 6470–6505.

© Universal Multidisciplinary Research Journal (Online)

Vol. I, Issue XII – April 2016
Article ID # 805
Peer–Review Refereed Research Journal

ISSN No. 2395-6941
Website: http://www.umrjournal.com/

CONSTITUTION AND CLASSIFICATION OF SYNTHETIC DYES

Hemlata,
Sec 1-4 Hisar
Email: hemlata1124@gmail.com

Introduction-Our life is very colorful, we come across many things which have specific colors. In this topic, we will discuss about the dye and its relation to the constitution of molecules. The dyes can adhere to compatible surfaces like a textile by forming covalent bond or by physical adsorption[1]. The dyes are currently being used to color various articles of our daily use.

Reason of Color production- When light of visible range fall on any substance three processes may occur:

- If the light is reflected totally from the substance, this appears white.
- If the light is absorbed totally from the substance, this appears black.
- If the certain portion of light is absorbed and the other portion is reflected from the substance, then it has the color of reflected light.

If a single band is absorbed, the substance will have the complimentary color to the absorbed band. The substance which is colorless also have absorption spectra, in these cases absorption takes place other than the visible region of electromagnetic spectra. The dyes possess colour because they absorb light in the visible spectrum (400–700 nm) and have at least one chromophore (colour-bearing group) and have a conjugated system[2,3,4].

Color of compounds was explained by some terms like chromophores and auxochromes by a chemist from German named Otto Witt. The chromophores are the functional group which impart the color to a substance that appears colored. Some chromophores are given as: - C = C -, - C = N -, - C = O -, - N = N -, - NO2, -Quinoid rings etc. Auxochromes[5,6,7] are those functional group which themselves are not impart their color but deepen the color of substance. Some important auxochromes are OH, NH2, NR2, X etc.

© Universal Multidisciplinary Research Journal (Online)

ISSN No. 2395-6941
Website: http://www.umrjournal.com/

Besides the auxochromes and chromophores two other terms are also used in dyes, these are bathochromic and hypsochromic group which are responsible for red shift and blue shift respectively.

Origin of color can also be explained by valence bond theory and molecular orbital theory as given below:

- **Valence bond theory:** According to this, when the electron pair of a molecule in ground state placed in the path of light, then they get excited. The wavelength of light absorbed depend on energy difference of ground state and excited state. If smaller is the difference, longer is wavelength. The presence of electron donating as well as electron withdrawing both groups enhance the conjugation so the colorless compound becomes colored. The Steric factor decreases the coloration of compounds.

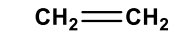

Ethene (colorless)

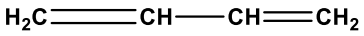

1,3-Butadiene (colorless)

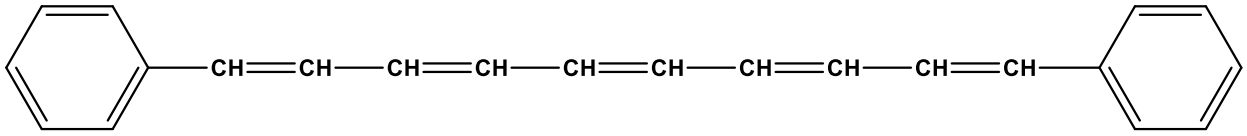

1,10-Diphenyl-1,3,5,7,9-decapentaene (orange)

- **Molecular orbital theory:** According to this, when a molecule absorbs a photon of light, the electronic transition is occur from bonding to anti-bonding orbital. Different type of electronic transition are possible depends on the type of electron present in molecule.

  The decreasing order of energy of transitions are: σ-σ*, σ-π*, n-σ*, π-π*, n-π*. Out of all only π-π* and n-π* can show the spectrum in UV region.

© Universal Multidisciplinary Research Journal (Online)

ISSN No. 2395-6941
Website: http://www.umrjournal.com/

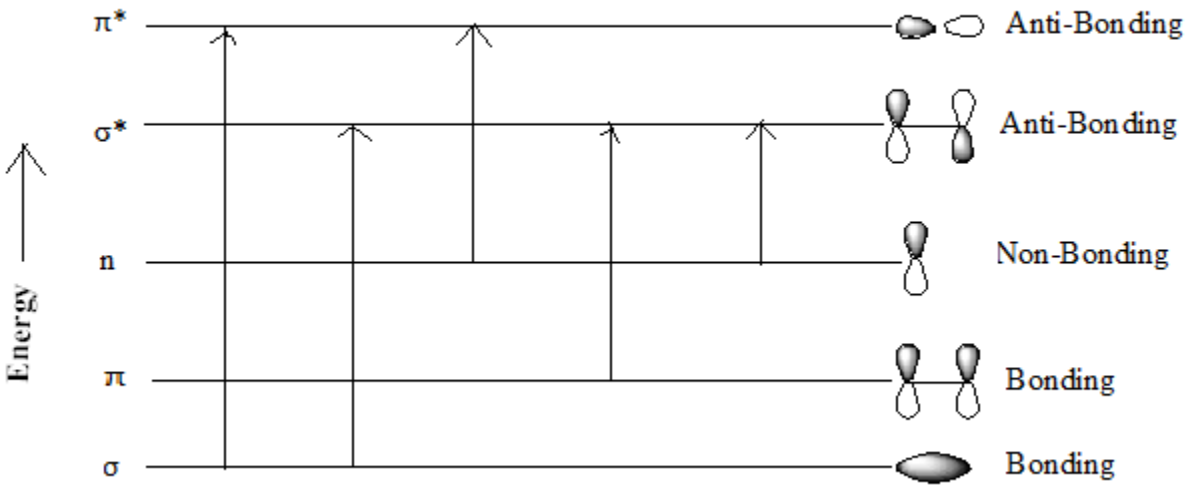

Dyes: The dye is a colored substance which can applied to a substance like textile, paper, hair, plastic, cosmetics to give it a colored appearance.

Conditions for dyes:

- The dye should have a suitable color.
- It should be capable to fix itself on the substance getting colored.
- After being dyed it must be fast to water, soap, light.

Types of dyes on the bases of their applications: The use of dye on a fabric depends on the nature of both fabric as well as dye. The dye molecules attached with the fibre through Covalent bonds, Ionic bonds, Hydrogen bonds or vander waals forces. On the basis of application, the dyes are of following types:

1. **Acid dyes:** The acid dyes contain the sodium salt of carboxylic acid and sulphonic acid groups in their basic structure. From their acid solutions these dyes are applied to the fabric and used to dye silk, wool, nylon etc. Some examples of these dyes are methyl orange, orange-1, orange-2 and congo red etc.

© Universal Multidisciplinary Research Journal (Online)

ISSN No. 2395-6941
Website: http://www.umrjournal.com/

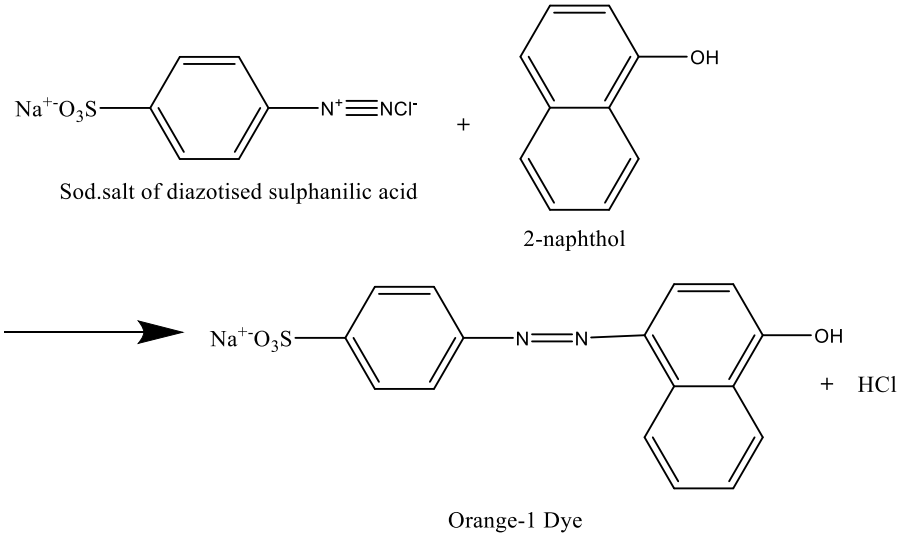

Orange-1 Dye

2. **Basic dyes:** The salt of the colored bases of azo dyes containing amino group (Auxochrome) are called basic dyes. Some nylons and polyesters can dyed by these. Examples are aniline yellow, butter yellow, malachite green etc.

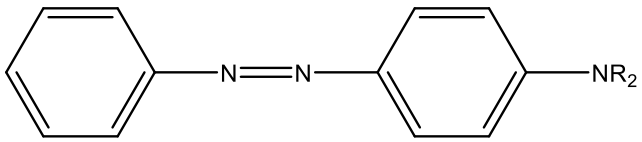

R=H, then Aniline Yellow
R= CH_3, Butter Yellow

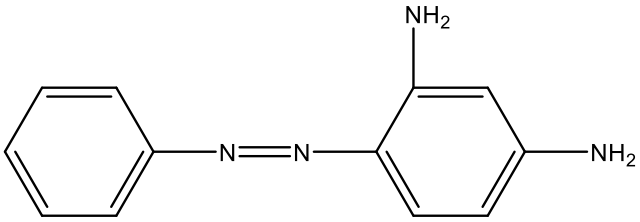

Chrysodine-G

3. **Direct dyes:** These dyes can directly applied on the fabric from aqueous solution. The direct dyes are used for dyeing cotton, wool, silk, nylon and rayon. Its examples are congo red and martius yellow.

© Universal Multidisciplinary Research Journal (Online)

ISSN No. 2395-6941
Website: http://www.umrjournal.com/

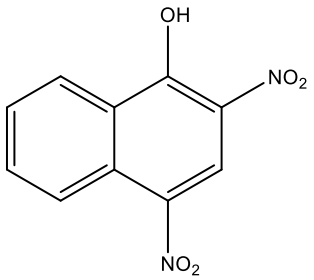

Martius Yellow

4. **Disperse dyes:** The disperse dyes are applied in the form of dispersion in a soap solution to the fabric. These are belongs to anthraquinone class of dyes. These are used for dyeing the synthetic fibres like nylon, polyester and polyacrylonitrile fibres. Celliton fast pink B and Celliton fast blue B are the examples of these dyes.

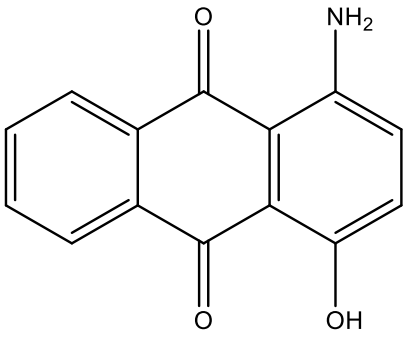

1-amino-4-hydroxyanthraquinone
(Celliton fast pink B)

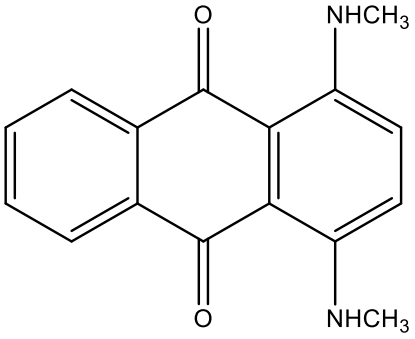

1,4-Di(methylamino)anthraquinone
(Celliton fast Blue B)

5. **Fibre reactive dyes:** In these dyes there is a reactive group which combines with hydroxyl or amino group of fibre. The color of the dyes are fast, due to the chemical bond formation between fabric and dyes. It is applied on cotton, wool or silk.

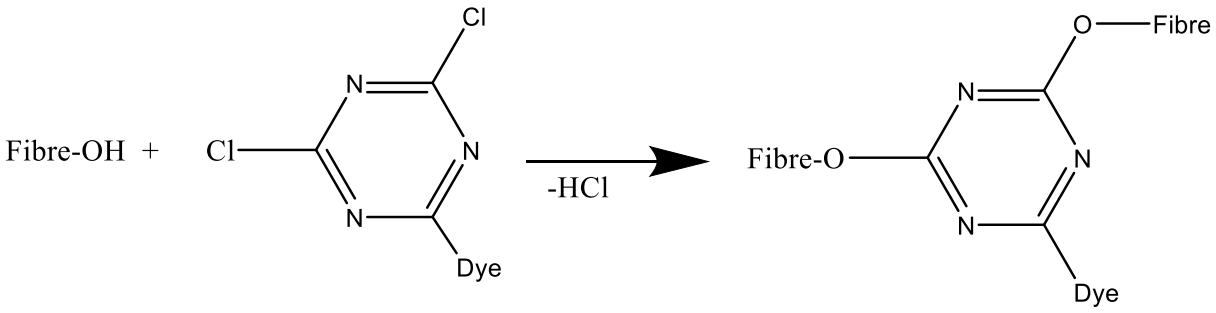

© Universal Multidisciplinary Research Journal (Online)

6. **Insoluble azo dyes:** These dyes are obtained by the coupling of phenols, aminophenols, naphthols, arylamines with diazonium salt. This is done by adsorption phenomenon and therefore color of dye is not fast. These are used for dyeing cellulose, silk, leather, nylon, polyester, polypropylene etc.

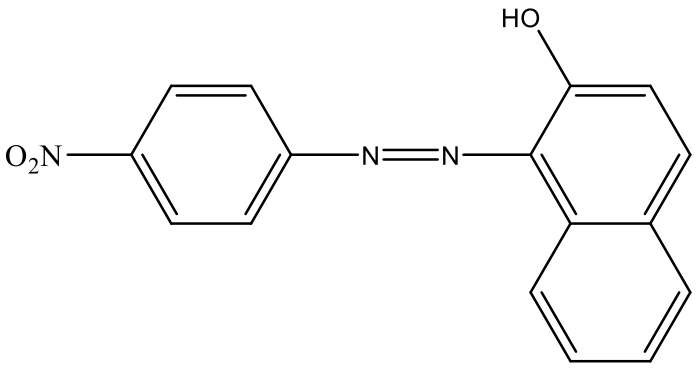

Para red

7. Vat dyes: These dyes can not applied directly on fabric but first reduced to soluble form, then these develop affinity for cellulose fibre. Hence these are used to dye mainly the cotton fibre. The main example of vat dyes is Indigo.

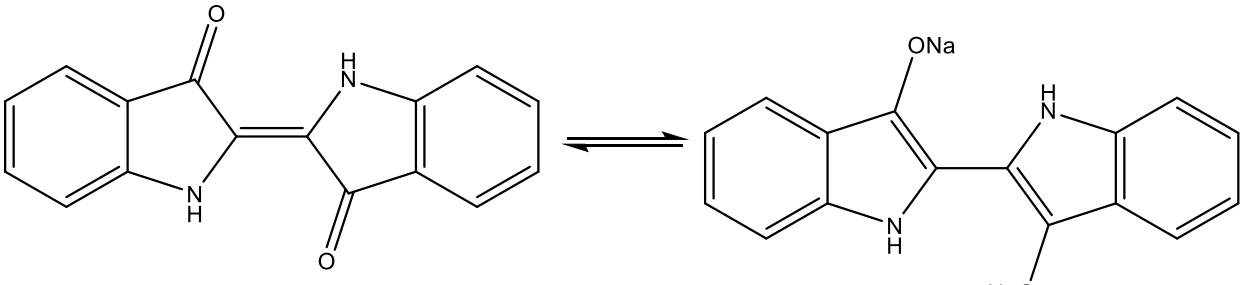

Indigo colored

Colorless form

References:

1. Bafana A, Devi SS, Chakrabarti T. Azo dyes: past, present and the future. Environ- mental Reviews 2011; 19 350–370.
2. E.N. Abrahart, Dyes and their Intermediates, New York: Chemical Publishing, 1–12, 1977.
3. R.L.M. Allen Colour Chemistry, London: Thomas Nelson and Sons Ltd. 11–13, 1971.

© Universal Multidisciplinary Research Journal (Online)

ISSN No. 2395-6941
Website: http://www.umrjournal.com/

4. Anon, Ecological and Toxicological Association of Dyes and Pigments Manufacturers, Textile Chemists and Colorist, 28 (4), 11, 1996.
5. Christie R. Colour Chemistry. Cambridge, United Kingdom: The Royal Society of Chemistry; 2001.
6. [6] Dos Santos AB, Cervantes FJ, van Lier JB. Review paper on current technologies for decolourisation of textile wastewaters: Perspectives for anaerobic biotechnology. Bio- resource Technology 2007; 98 (12) 2369-2385.
7. Arun Prasad AS, Bhaskara Rao KV. Physico chemical characterization of textile effluent and screening for dye decolorizing bactéria. Global Journal of Biotechnology and Biochemistry, 5(2) 80-86, 2010.

© Universal Multidisciplinary Research Journal (Online)